North Asian International Research Journal of Social Science & Humanities

IRJIF I.F. : 5.010

ISSN: 2454-9827 Vol. 6, Issue-11 November -2020

Index Copernicus Value: 57.07 DOI NUMBER: 10.6947/2454-9827.2020.00009.9 Citation Index

A Peer Reviewed Refereed Journal

आत्मा के अस्तित्त्व की सिद्धि

-साध्वीश्री श्रुतिदर्शनाश्री

काष्ठेययाग्नि धरणीतलेकं सर्पिर्ययादध्नि तिलेपुतैकं
आमोद बिन्दुकुसुमाकरेषु तथायआत्मांगि शरीर देशे।

लकड़ी में जैसे अग्नि रही हुई है, जमीन में जैसे पानी रहा हुआ है, दही में जैसे घी रहा हुआ है, तिल में जैसे तेल रहा हुआ है, पुष्पों में जैसे सुगंध, उसी प्रकार हर प्राणियों के शरीर में आत्मा रही हुई है।

भारतीय दर्शनों में आत्मा के विषय में भिन्न-भिन्न मान्यताएँ हैं। कोई आत्मा के अस्तित्व को ही नहीं स्वीकारते हैं, तो कोई आत्मा को नश्वर मानते हैं। कोई बुद्धि को, कोई इन्द्रिय या मन को और कोई विज्ञान संधान को आत्मा समझता है। कोई आत्मा को नित्य मानते हैं। कोई, आत्मा कर्म का कर्त्ता और भोक्ता भी आत्मा नहीं है, ऐसा मानते हैं। वस्तुतः चार्वाक, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, वेदान्त आदि दर्शनों में आत्मा की अवधारणा युक्तिसंगत नहीं है।

दर्शन के भी दो विभाग पड़ते हैं- आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन। श्री पाणिनी ऋषि ने आस्तिक शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है- "अस्ति परलोक इति मतिर्यस्य स आस्तिकः।"[1] आत्मा का परलोक है, ऐसी जिनकी मति है, वह आस्तिक है। श्री जैनाचार्य कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरिजी ने भी कहा है कि-[2] जो आत्मा को मानते हैं, आत्मा का परलोक मानते हैं, पुण्य-पाप को मानते हैं और मोक्ष को मानते हैं, वे आस्तिक हैं। इसके विपरीत नास्तिक दर्शन आत्मा के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते हैं।

आस्तिक दर्शन में भी आत्मा संबंधी विभिन्न दर्शनों में विभिन्न मान्यताएँ हैं, जिसमें जैनदर्शन में आत्मा का सर्वांगी स्वरूप संसारावस्था से लेकर मोक्षावस्था तक का युक्तिसंगत है तथा आत्मा के 'अस्तित्त्व की सिद्धि' अज्ञ जीवों को भी सरलता से समझ में आए, इस प्रकार षट्स्थान से की गई है, जो इस प्रकार है-[3] (1) आत्मा है, (2) वह नित्य है, (3) स्वकर्म की कर्त्ता है, (4) भोक्ता है, (5) मोक्ष है तथा (6) मोक्ष का उपाय है।

प्रथम स्थान : आत्मा है।

चार्वाक दर्शन के सिवाय सभी ने आत्मा के अस्तित्त्व को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है।

चार्वाक दर्शन कहता है कि आत्मा जैसा कोई स्वतंत्र तत्त्व नहीं है। अगर है तो उसका प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता है। जो दिखता है, वह तो शरीर है, अतः जो शरीर है, वही आत्मा है।[4]

यशोविजयजी इस मत की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि- "चार्वाक दर्शन की यह मान्यता मिथ्या है। कारण कि संशयादि के कारण जीव प्रत्यक्ष ही है।" आत्मा है या नहीं "किम् अस्मि नास्मि"? यह संशय किसको होता है?[5] विचार शक्ति के कारण ही यह संशय उत्पन्न हुआ और इस विचारशक्ति को हम ज्ञानगुण के रूप में पहचान सकते हैं। चूंकि गुणी के बिना गुण नहीं रह सकता है तथा गुण और गुणी में कथंचित् अभेद होता है। अतः आत्मा ही गुणी है, इस प्रकार के संशय से प्रत्यक्ष आत्मा का प्रत्यक्षपना सिद्ध होता ही है। विशेषावश्यक की टीका में भी कहा गया है- देह मूर्त्त और जड़ है, संशय ज्ञानरूप है और ज्ञान आत्मा का गुण है तथा आत्मा अमूर्त्त है। गुण अनुरूप गुणी में ही रहते हैं।[6]

ज्ञानगुण अगर शरीर का गुण मानते हैं, तो यह गुण 'शव' में भी होना चाहिए, परन्तु 'मृतक' संशय करके कुछ नहीं पूछता है। पूछने वाला शरीर से भिन्न है, इसी को आत्मा कहते हैं। पाश्चात्य विचारक देकार्त ने भी इसी तर्क के आधार पर आत्मा के अस्तित्त्व को सिद्ध किया है। वह कहता है- "सभी के अस्तित्त्व में संदेह किया जा सकता है, परन्तु संदेहकर्त्ता में संदेह करना तो सम्भव नहीं है। "मैं विचार करता हूँ, अतः मैं हूँ" इस प्रकार देकार्त के अनुसार भी आत्मा का अस्तित्त्व स्वयंसिद्ध है।[7]

आचार्य शंकर ब्रह्मसूत्रभाष्य में ऐसे ही तर्क देते हुए कहते हैं- "जो निरसन कर रहा है, वही तो उसका स्वरूप है।[8] आत्मा के अस्तित्त्व के लिए स्वतः बोध को आचार्य शंकर भी एक प्रबल तर्क के रूप में स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि "सभी को आत्मा के अस्तित्त्व में भरपूर विश्वास है, कोई भी ऐसा नहीं है, जो यह सोचता हो कि मैं नहीं हूँ।"[9]

इसी बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि 'शास्त्रवार्ता समुच्चय' ग्रंथ में कहते हैं कि "आत्मा एक सत्ताशील पदार्थ है तो हमें उसका प्रत्यक्ष दर्शन क्यों नहीं होता, उसी प्रकार जैसे कि एक घड़े का होता है? इस शंका का समाधान करते हुए कहते हैं कि- आत्मा का दर्शन हमें होता ही है और वह इसलिए कि 'मैं हूँ- इस ज्ञान का स्पष्ट अनुभव हमें होता ही है, "मेरा शरीर भारी है" इस प्रकार की ज्ञानानुभूति के समय हमें मैं तथा शरीर के बीच भेद का ज्ञान होता है।[10] अपने द्वारा अपने को जानना आत्मा का ही स्वभाव है।

'तर्कशास्त्र' का एक नियम है कि कोई वस्तु यहाँ है या नहीं, इस प्रकार का संशय होता है तो इस बात का कहीं न कहीं अस्तित्त्व होना ही चाहिए। सर्वथा अविद्यमान वस्तु में 'नहीं है' का प्रयोग नहीं ....

आगम शास्त्रों के कई पाठों में आत्मसिद्धि के सूत्र मिलते ही हैं। यथा उपासकदशांग में कहा है-

आत्मा के अस्तित्त्व को नहीं स्वीकारने वाले नास्तिक प्रदेशी राजा, केशी गणधर से समाधान को प्राप्त करके आस्तिक बने एवं श्रावक धर्म को स्वीकार किया। प्रदेशी राजा भी शरीर और आत्मा को एक ही मानते हुए शंका करते हैं कि मैंने एक कलश में चोर को डलवाकर बंद करवा दिया। मृत्यु के पश्चात् जब चोर को निकाला गया तो कलश में कहीं भी छिद्र या विवर नहीं दिखाई दिया गया अर्थात् आत्मा नाम का कोई पृथक तत्त्व नहीं है। यदि होता तो आत्मा के निकलने पर कहीं तो छिद्र होना था?

केशी गणधर शंका का समाधान करते हुए प्रदेशी राजा से पूछते हैं कि यदि कोई व्यक्ति निश्छिद्र कोष्ठागार में स्थिर होकर जोर-जोर से भेरी को बजाय तो वह शब्द या ध्वनि बाहर निकलती है? यदि निकलती है तो

कोष्ठागार में राई जितना भी छिद्र होता है, जिससे भीतर का शब्द बाहर निकल सके।

नहीं होता है, इस प्रकार आत्मा की गति अप्रतिहत है। उसकी गति कहीं भी रुकती नहीं है। आत्मा पृथ्वी, शिला एवं पर्वत को भेदकर भी बाहर निकल जाता है। अतः हे प्रदेशी! तुम श्रद्धा करो। आत्मा अन्य है, शरीर अन्य है।[11]

आत्मसिद्धि शास्त्र में कहा है कि-

देह न जाणे तेहने, जाणे न इन्द्री प्राण,
आत्मा नी सत्ता वडे, तेह प्रवर्ते जाण।।

देह उसको (आत्मा) को जानती नहीं, इन्द्रियाँ उसको जानती नहीं और श्वासोच्छ्वासरूप प्राण भी उसको जानते नहीं, ये सभी एक आत्मा की सत्ता पाकर प्रवर्ते हैं, नहीं तो जड़ होकर ही रहते हैं, इस प्रकार जानो।[12]

आत्मा के अस्तित्त्व की सिद्धि प्रमाणों के द्वारा

आत्म-सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण-[13] सर्वज्ञ को आत्मा प्रत्यक्ष दिखती है। जिस प्रकार मनुष्य को आंतरिक संदेह-विकल्प प्रत्यक्ष होते हैं और अवसर आने पर व्यक्त कराते हैं एवं वे मान्य होते हैं, उसी प्रकार सर्वज्ञ को प्रत्यक्ष होता हुआ आत्मा मान्य होना चाहिए।

'मैं करता हूँ', 'मैंने किया', 'मैं करुंगा' आदि त्रैकालिक अनुभव में 'हूँ' का अनुभव है, वह आत्मा का ही प्रत्यक्ष अनुभव है, क्योंकि तीनों काल में आत्मा तदवस्थ है, शरीर नहीं। शरीर तो परिवर्तनशील है।

स्वप्न में अनुभव कौन करता है? आत्मा ही। गाढ़ अंधकार में जहाँ स्वयं का शरीर भी दिखता नहीं, वहाँ 'मैं हूँ' ऐसा अबाधित प्रत्यक्ष अनुभव आत्मा को ही होता है।

आत्मसिद्धि के अनुमान प्रमाण-[14] प्रत्यक्ष अनुभव से आत्मा सिद्ध है तो अनुमान प्रमाण की क्या आवश्यकता है? शून्यवादी कहते हैं कि आंतरिक संवेदनाएं मिथ्या है, असत् है। इस कारण से आत्मा भी असत् ठहरती है। अतः अनुमान प्रमाण से आत्म सिद्धि।

शरीर में से आत्मा निकल जाने पर घोड़ा बिना गाड़ी की तरह शरीर में कोई भी इष्ट प्रवृत्ति अनिष्ट निवृत्ति होती नहीं। अतः अनुमान प्रयोग यह शरीर किसी से संचालित है, उसके होने पर ही उसमें प्रवृत्ति होती है। अश्व संचालित रथ।

शरीर इन्द्रियाँ और अवयव भोग्य है तो कोई भोक्ता होना चाहिये। सुंदर वस्त्र की तरह सुंदर देह पर खुश होने वाला कौन? दो हाथ, दो पैर नौकर जैसे हैं। इनके पास से काम कौन लेता है? जीवरूपी माली बिना देह-बगीचा सूख जाता है। आत्मा के बिना कौन संभालता है, कौन भोक्ता है?

शरीर, यह आत्मा का घर है। पैसा आदि ममत्व करने की चीज है, तो शरीर का ममत्व करने वाला कौन? देह ममत्व करनेवाली आत्मा है। ममत्व यदि अभ्यास से होता है, तो जन्मते ही बालक को स्वशरीर का ममत्व कैसे हुआ? पूर्वजन्म के अभ्यास से। इस प्रकार दो जन्म के मध्य में एक स्वतंत्र आत्मा मानना ही पड़ेगा।

उपमान प्रमाण से आत्मा की सिद्धि-[15] उपमान प्रमाण में किसी के साथ तुलना की जाती है। यहाँ आत्मा की तुलना वायु, पुष्प की सुगंध आदि के साथ की जा सकती है। पुष्प गंधादि का अनुभव होता है, किन्तु दिखाई

नहीं देती। वैसे ही आत्मा का अनुभव होता है, दिखती नहीं। क्योंकि आत्मा अमूर्त्त है।

अर्थापत्ति प्रमाण से सिद्धि- जैसे महीनों तक दिन में नहीं खाने वाले देवदत्त का शरीर पुष्ट दिखता है तो रात्रिभोजन बिना शारीरिक पुष्टता सिद्ध नहीं होती। वैसे ही मृत्यु के पश्चात् ही हलचल नहीं कर सकने वाले शरीर में मृत्यु के पहले हलचल दिखती है, तो वह जीवंत स्थिति शरीर में आत्मा की हाजिरी के बिना नहीं है।

षट्काय में आत्मा (जीव) के अस्तित्त्व की सिद्धि- जीव के लक्षण से युक्त बेन्द्रियादि में जीवत्व मानना उचित है, परन्तु पृथ्वी आदि में जीवत्व किस तरह से श्रद्ध बन सकेगा?

शंका का समाधान इस प्रकार है-

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति जीव के शरीर हैं। क्योंकि वे छेद्य, भेद्य, उत्क्षेप्य, भोग्य, ग्रेय, रसनीय, स्पृश्य द्रव्य हैं। जैसे कि गाय के सींग इत्यादि। केवल विशेष इतना ही है कि कोई पुद्गल जीवसहित होकर सजीव स्वरूप (चेतन) होता है और कोई पुद्गल जीवरहित होने से अजीव स्वरूप होता है। इस बात को सिद्ध करता अनुमान- "शस्त्र से उपहंत नहीं हुई (खानकी) पृथ्वी इत्यादि सचेतन है, क्योंकि वह वृद्धि पाती शिलाओं का समुदाय है। जैसे हाथ-पैर आदि का समुदाय।" इसी प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति सचेतन हैं। क्योंकि ये उत्पन्न होते हैं, मृत्यु को प्राप्त करते हैं ,रोगी होते हैं, वृद्धावस्था पाते हैं एवं जन्म-मरण हेतुओं से इनका जीवत्त्व सिद्ध होता है।[16]

आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारने वाले षड्दर्शनों में भी आत्मा के स्वरूप मान्यता में भिन्नताएँ हैं। जैनदर्शन में आत्मा का स्वरूप षट्स्थान से समझाया गया है, जिसमें सभी दर्शनों की मान्यताओं का समावेश हो जाता है।

बौद्ध दर्शन- आत्मा नित्य नहीं है। आत्मा ज्ञान क्षण की आवली रूप है।[17]

सांख्य दर्शन- आत्मा को पुरुष रूप में स्वीकार करता है। इनकी मान्यता है कि आत्मा कर्म का कर्त्ता और भोक्ता नहीं है।

वेदान्त दर्शन- आत्मा को शुद्ध ब्रह्म रूप में एक ही मानता है।

न्याय वैशेषिक दर्शन- आत्मा में ज्ञानादिगुण मानता है, परन्तु वह आगंतुक कारणवश उत्पन्न होते हैं। कारण नहीं हो तो कोई ज्ञानादि नहीं।

श्रीमद् भगवत गीता में आत्मा के अस्तित्व के संबंध में स्पष्ट कहा है-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भयूः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[18]

अर्थात् यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा होकर फिर होने वाला है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता है।

आगे पुनः कहा गया है-

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।[19]

तात्पर्य यह है कि आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं और इसको आग नहीं जला सकती है तथा इसको जल नहीं गीला कर सकता है और वायु नहीं सुखा सकता है।

जैनदर्शन- में आत्मा द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। जैसे स्वर्ण से मुकुट, कुंडल आदि पर्यायें उत्पन्न होती हैं। इसमें मूल द्रव्य है सोना, जो सामान्य है, बदलता नहीं है, वैसे जीवरूपी स्वर्ण की एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय आदि पशु, मनुष्य, नारकी, देव आदि अनेक प्रकार की पर्चायें होती हैं। इसी प्रकार जीव स्वकर्म का कर्त्ता है, भोक्ता है, कर्म से मुक्त अवस्था है, मोक्ष है एवं मोक्ष का उपाय भी है। इस प्रकार छः दर्शन में छः स्थान समा जाते हैं। विशेष विचार करने पर किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहता है।

संदर्भ सूची

1. अष्टाध्यायी व्याकरण ग्रंथ, पाणिनि ऋषि
2. सिद्धहेमशब्दानुशासन, व्याकरण ग्रंथ, श्री हेमचन्द्र सूरिजी
3. आत्मसिद्धि शास्त्र गाथा-43, श्रीमद् राजचन्द्रजी
4. अध्यात्मसार, ।।16।।/390, मिथ्यात्वत्याग अधिकार, उ.यशोविजयजी
5. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा 1557
6. विशेषावश्यकभाष्य टीका, पृष्ठ 668
7. पश्चिमी दर्शन, देकार्त, पृष्ठ 106
8. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, 3/9/7
9. वही, 1/1/2
10. शास्त्रवार्ता समुच्चय ग्रंथ, हरिभद्रसूरि, 1/79
11. राजप्रश्नीय सूत्र, 215-241,
12. आत्मसिद्धि शास्त्र, गाथा 53
13. गणधरवाद, आ.भुवनभानु सूरि, दिव्यदर्शन ट्रस्ट, पृ.13
14. गणधरवाद, पृष्ठ 14
15. वही, पृष्ठ 23
16. षड्दर्शनसमुच्चय, आ.हरिभद्र सूरि, भावानुवाद संयमकीर्तिविजयजी म., भाग-2, पृ.91/714
17. उपाध्याय यशोविजयजी का अध्यात्मवदा, लेखिका साध्वी डॉ.प्रीतिदर्शनाश्री, पृष्ठ 93
18. श्रीमद् भागवत गीता, 2/20
19. वही, 2/23

सम्पर्क सूत्र
साध्वीश्री श्रुतिदर्शनाश्री
C/o श्री प्रकाशचन्द्र गादिया
127, चौंसठ योगिनी मार्ग, नयापुरा,
उज्जैन - 456006 (म.प्र.)
मोबा. 6261563503